भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 ई.

आधुनिक भारत के इतिहास में 1947 ई. के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम का विशेष महत्व है। इसका निर्णायक महत्व इस दृष्टि है कि इसने भारत में एक नवीन युग की शुरुआत की। वस्तुतः ब्रिटिश संसद द्वारा पारित यह अंतिम अधिनियम था। इसके पश्चात् स्वतंत्र भारत का अपना संवैधानिक इतिहास प्रारंभ होता है।

वास्तव में 1947 का भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम स्वयं में कोई मौलिक कृति न था। इसके द्वारा माउंटबैटन की योजना को ही प्रभावी बनाया गया था। भारत में अंतिम गवर्नर-जनरल के रूप में माउंटवैटन की नियुक्ति का उद्देश्य, भारत में सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया को मूर्तरूप देना था। माउंटबेटन ने प्रमुख भारतीय राजनीतिक दलों में एकमतता ध्येय प्राप्त कर अपनी योजना का प्रारूप तैयार किया। प्रारूप को वैधानिक रूप प्रदान करने के ध्येय से ब्रिटिश सरकार ने औपचारिकता पूरी करने हेतु कदम उठाया। इसी के प्रयास-स्वरूप प्रधानमंत्री एटली ने माउंटबैटन योजना को विधेयक के रूप में 15 जुलाई, 1947 ई. को कामन्स सभा में तथा 16 जुलाई को लॉर्ड्स सभा में प्रस्तुत किया। शीघ्र ही 18 जुलाई 1947 ई. को इसके पारित होने के बाद इस पर शाही हस्ताक्षर हो गये। यही विधेयक भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के नाम से जाना गया। वस्तुतः इस अधिनियम द्वारा 3 जून, 1947 की योजना को ही वैधानिक रूप प्रदान किया गया था। इस अधिनियम की प्रमुख धारायें निम्नानुसार थीं-

भारतीय उपमहाद्वीप को दो उपनिवेशों, भारतीय संघ तथा पाकिस्तान में बांट दिया गया।

भारतीय संघ या हिन्दुस्तान प्रदेश में वे सभी प्रदेश सम्मिलित किये जायेंगे, सिवाय उन प्रदेशों के जो अब पाकिस्तान कहलायेगा। पाकिस्तान के प्रदेश में सिंध, ब्रिटिश ब्लूचिस्तान, उ.-प. सीमांत प्रांत, पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगाल सम्मिलित होंगे। इसमें अंतिम दो प्रांतों की सुनिश्चित सीमाओं का निर्धारण एक सीमा आयोग, जनमत तथा निर्वाचन द्वारा किया जायेगा।

उन समस्त संधियों की समाप्ति की जायेगी व अनुबंध रद्द समझे जायेंगे जो महामहिम की सरकार तथा भारतीय नरेशों के मध्य हुये थे। शाही उपाधि से 'भारत का सम्राट' शब्द समाप्त हो जायेगा।

प्रत्येक राज्य के लिये एक-एक गवर्नर-जनरल होगा, जो महामहिम द्वारा नियुक्ति किया जायेगा और वह इस राज्य की सरकार के प्रयोजन के लिये महामहिम का प्रतिनिधित्व करेगा इसमें यह भी प्रावधान था कि यदि दोनों राज्य चाहें तो वही व्यक्ति इन दोनों राज्यों का गवर्नर-जनरल रह सकता है।

भारत तथा पाकिस्तान के विधानमंडलों को कुछ विषयों पर कानून निर्माण का पूर्ण अधिकार दिया गया-अपने राज्यों के संबंध में इत्यादि।

15 अगस्त 1947 के बाद भारत तथा पाकिस्तान पर अंग्रेजी संसद के क्षेत्राधिकार की समाप्ति।

इस अवधि के उपरांत महामहिम की सरकार, ब्रिटिश सरकार के शासन अथवा उसकी रक्षा के प्रति उत्तरदायी नहीं होगी।

स्वतः ही केंद्रीय विधानसभा तथा राज्य परिषद भंग हो जायेंगी तथा इन नये दो राज्यों की संविधान सभायें अपने-अपने राज्यों के लिये विधान मंडल की शक्तियों का प्रयोग करेंगी।

भारत सरकार अधिनियम 1935 तब तक यथासंभव इन दोनों राज्यों का शासन चलाने में सहायता देगा, जब तक कि नये संविधान प्रत्येक राज्य द्वारा अपना नहीं लिये जाते। आवश्यकता पड़ने पर अधिनियम परिवर्तित भी किया जा सकता है लेकिन इसके लिये गवर्नर-जनरल की अनुमति आवश्यक होगी।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम की क्रियान्वित करने के लिये गवर्नर-जनरल को आवश्यक शक्तियां दी गयीं।

भारत सचिव द्वारा नियुक्त उन पदाधिकारियों को पूर्व सुरक्षा दी गयी, जो इन राज्यों की सेवा में लगे हुये थे। भविष्य में ऐसे पदाधिकारियों की नियुक्ति के अधिकार से भारत सचिव वंचित था।

गवर्नर-जनरल इस बात की आज्ञा दे सकता था कि महामहिम की भारतीय सेना का दोनों राज्यों में बंटवारा होगा। साथ ही विभाजन कार्य की पूर्णता तक गवर्नर-जनरल ही सेना की कमान तथा प्रशासन के लिये उत्तरदायी होगा। दोनों ही राज्य अपनी-अपनी सीमा में आई सेना के शासन के लिये पूर्णरूपेण उत्तरदायी होगे।

भारत सचिव तथा भारत गृह लेखा-आयुक्त के कार्य को बनाये रखने के लिये भी संक्रमणीय प्रावधान बनाये गये।

यह अधिनियम, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियमं 1947 कहलाया।

अंततः 15 अगस्त 1947 को भारत की दी स्वतंत्र डोमिनियनों- भारत तथा पाकिस्तान में बांट दिया गया। पाकिस्तान के प्रथम गवर्नर जनरल मु. अली जिन्ना बने किंतु भारत के लिये माउंटबैटन को ही साग्रह गवर्नर- जनरल बने रहने को कहा गया।

इस प्रकार, भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 ई. ने विभाजन के साथ भारत की स्वतंत्रता घोषित कर दी।

अधिनियम का मूल्यांकन

भारत के संवैधानिक तथा आधुनिक इतिहास में 1947 ई. के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम का विशेष महत्व है। प्रथमतः इसके द्वारा भारत, पाकिस्तान तथा भारतीय रियासतों में अंग्रेजी सत्ता समाप्त हो गयी। इन क्षेत्रों में गवर्नर-जनरल को संवैधानिक प्रमुख बनाया गया।

इस प्रकार, भारत तथा पाकिस्तान को अपने-अपने संविधान के निर्माण का अधिकार देकर भारतीय उपमहाद्वीप में साम्राज्यवादी युग का अंत कर दिया गया। इस परिणाम के कारण अधिनियम का यह पहलू तो सुखद था, किंतु विभाजन इस महाद्वीप के लिये इतनी बड़ी समस्या बन गया कि इसके दुष्परिणाम आज भी दिखाई देते हैं।

वास्तव में विभाजन का आधार धर्म नहीं था; भारत में अब भी कई करोड़ मुसलमान थे। वैसे विभाजन तथा स्वतंत्रता अधिनियम में मौलिकता नहीं थी। यह पूर्णनिर्मित परिस्थितियों से प्रेरित तथा निर्मित योजना की वैधानिकता का प्रमाण मात्र था।

अंग्रेजों की जल्द वापसी के निर्णय से उत्पन्न समस्याएं अंग्रेजों की भारत से शीघ्रातिशीघ्र वापसी तथा भारतीयों को जल्द सत्ता हस्तांतरण करने के निर्णय से अनेक समस्यायें भी खड़ी हो गयीं। इससे विभाजन के संबंध में सुनिश्चित योजना बनाने की रणनीति गड़बड़ा गयी तथा यह पंजाब में व्यापक नरसंहार को रोकने में असफल रही क्योंकि-

विभाजन की योजना के संबंध में एक सुनिश्चित एवं दूरदर्शितापूर्ण रणनीति का अभाव था। साथ ही यह योजना भी नहीं बनायी गयी थी कि विभाजनोपरांत उत्पन्न समस्याओं को कैसे हल किया जायेगा।

माउंटबेटन यह मानकर चल रहे थे कि उन्हें भारत एवं पाकिस्तान दोनों का गवर्नर-जनरल बनाया जायेगा, जिससे वे विभाजनोपरांत उत्पन्न समस्याओं को हल कर लेंगे। लेकिन जिन्ना, पाकिस्तान का गवर्नर-जनरल पद स्वयं संभालना चाहते थे।

सीमा आयोग (रेडक्लिफ की अध्यक्षता में) की घोषणा करने में अनावश्यक देरी की गयी। यद्यपि इस संबंध में निर्णय 12 अगस्त 1947 को ही लिया जा चुका था लेकिन माउंटबेटन ने इसे 15 अगस्त 1947 को सार्वजनिक करने का निर्णय लिया। इसके पीछे उनकी यह सोच थी कि इससे सरकार, किसी भी प्रकार की विपरीत घटना होने पर उसकी जिम्मेदारी से बच जायेगी।

प्लान बाल्कान

इसे बाल्कान योजना के नाम से भी जाना जाता है। वर्ष 1947 में मार्च से मई के बीच माउंटबैटन ने निर्णय किया कि कैबिनेट मिशन योजना अनियंत्रित हो चुकी है तथा उन्होंने इसकी जगह वैकल्पिक योजना तैयार की। इस योजना में यह प्रावधान था कि सत्ता का हस्तांतरण पृथक-पृथक प्रांतों को किया जाये या सत्ता हस्तांतरण से पहले यदि परिसंघ का गठन हो जाये तो उसके साथ ही इसमें यह प्रावधान भी था कि बंगाल एवं पंजाब को यह विकल्प दिया जाये कि वे अपने बंटवारे के लिये जनमत संग्रह का सहारा ले सकते हैं। इस प्रकार देशी रियासतों के साथ विभिन्न समूहों को यह छूट होगी कि वे भारत में

सम्मिलित होना चाहते हैं या पाकिस्तान में या फिर अपना स्वतंत्र अस्तित्व प्रतिक्रिया व्यक्त करने के कारण यह योजना त्याग दी गयी।

राज्यों का एकीकरण

वर्ष 1946-47 के दौरान राज्यों में विभिन्न जन-आंदोलन उठ खड़े हुये, जिसमें लोगों ने अधिक राजनीतिक अधिकार तथा संविधान सभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने की मांग की। 1945 में उदयपुर में तथा 1947 में ग्वालियर में अखिल भारतीय राज्य जन सम्मेलनों का आयोजन किया गया, जिनकी अध्यक्षता जवाहरलाल नेहरू ने की। उन्होंने घोषणा की कि जो राज्य संविधान सभा में सम्मिलित होने से इंकार करेंगे उनसे शत्रुतापूर्ण व्यवहार किया जायेगा। जुलाई 1947 में वल्लभभाई पटेल को 'नये राज्यों के विभाग' का दायित्व सौंपा गया। श्री पटेल के नेतृत्व में दो चरणों में विभिन्न राज्यों को भारत में सम्मिलित करने का कार्य किया गया। इसके लिये पटेल ने दूरदर्शितापूर्ण सामंजस्य, जनता के दबाव एवं धमकी तीनों युक्तियों का सहारा लिया।

प्रथम चरण

15 अगस्त 1947 तक कश्मीर, हैदराबाद एवं जूनागढ़ को छोड़कर लगभग सभी राज्यों ने भारत में सम्मिलित होने के विलय-पत्रों पर हस्ताक्षर कर दिये थे। ये सभी राज्य अपनी रक्षा, विदेशी मामले और संचार व्यवस्था की भारत के अधीनस्थ मानकर सम्मिलित हो गये। देशी रियासतों के शासक विलय-पत्रों पर हस्ताक्षर करने के लिये आसानी से तैयार हो गये क्योंकि-

उनके सम्मुख इसके अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं था।

इन तीन प्रमुख मामलों का दायित्व भारत की सरकार द्वारा ले लेने से वे लगभग निश्चित हो गये।

आंतरिक राजनैतिक संरचना में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा था।

15 अगस्त 1947 तक 136 देशी रियासतें भारत में सम्मिलित हो चुकी थीं। कश्मीर ने 26 अक्टूबर 1947 को तथा हैदराबाद एवं जूनागढ़ ने 1948 में विलय-पत्रों पर हस्ताक्षर किये।

द्वितीय चरण

बहुत सी छोटी-छोटी रियासतें, जो आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में अलग-अलग नहीं रह सकती थीं, संलग्न प्रांतों में विलय कर दी गयीं। जैसे- छत्तीसगढ़ और उड़ीसा की 39 रियासतें या तो मध्य प्रांत या उड़ीसा में मिला दी गयीं तथा गुजरात की रियासतों को बंबई प्रांत में सम्मिलित कर दिया गया। इन रियासतों के

विलय का एक अन्य रूप उन्हें ऐसी इकाइयों के रूप में गठित करना था, जिनका प्रशासन केंद्र द्वारा चलाया जाये। इस श्रेणी में विन्ध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, बिलासपुर, भोपाल और कच्छ की रियासतें थीं। एक अन्य प्रकार का विलय, राज्य संघों का गठन करना था। इस प्रकार काठियावाड़ की संयुक्त रियासतें, मध्य प्रांत की रियासतें, मध्य भारत एवं विन्ध्य प्रदेश के संघ, पूर्वी पंजाब रियायती संघ और पटियाला, राजस्थान, कोचीन और त्रावणकोर की संयुक्त रियासतें अस्तित्व में आयीं।

इस चरण को पूरा होने में लगभग एक वर्ष का समय लगा। देशी रियासतों को विलय के लिये राजी करने हेतु राजाओं को अनेक रियासतें दी गयीं। रजवाड़ों को विशेषाधिकार (प्रिवीपस) प्रदान किये गये तथा अनेक राजाओं को राज्यपाल एवं राजप्रमुख के पद दिये गये।

कम समय में देश का इस तीव्र गति से एकीकरण, सरदार वल्लभभाई पटेल की एक महान उपलब्धि थी।

कांग्रेस ने विभाजन क्यों स्वीकार किया?

कांग्रेस ने इस टाले न जा सकने वाले दुखद विभाजन को इसलिये स्वीकार किया क्योंकि वह मुसलमानों को राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में सम्मिलित करने में असफल रही। विभाजन से कांग्रेस के नेतृत्व में साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के दो पक्ष उजागर हुये। इस दिशा में कांग्रेस द्वारा किये गये प्रयासों को दो भागों में बांटा जा सकता है-

विभिन्न समूहों, वर्गों, समुदायों एवं क्षेत्रों का एक राष्ट्र के रूप में एकीकरण।

भारत के लिये स्वतंत्रता सुनिश्चित करना। यद्यपि कांग्रेस, अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिये बाध्य करने पर सफल रही। वह इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भारतीयों में चेतना जागृत करने तथा जन दबाव बनाने में भी सफल रही किंतु वह साम्प्रदायिक रूप से राष्ट्र का एकीकरण नहीं कर सकी। विशेषतयाः मुसलमानों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने में तो वह पूर्णतया विफल रही।

सत्ता का त्वरित हस्तांतरण ही साम्प्रदायिक हिंसा एवं लीग की प्रत्यक्ष कार्यवाई को रोक सकता था। अंतरिम सरकार के कई मुद्दों पर असफल होने से भी पाकिस्तान के निर्माण की धारणा को हवा मिली तथा उसका निर्माण अवश्यंभावी दिखाई देने लगा।

विभाजन की योजना में देशी रियासतों को स्वतंत्रता देने या अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखने से स्पष्ट रूप से इंकार किया गया था। यह राष्ट्रीय एकता के लिय महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। क्योंकि इनके स्वतंत्र होने की दिशा में ये देश की एकता के लिये खतरा उत्पन्न कर सकते थे। यह एक प्रकार यह राष्ट्र का बाल्कनीकरण था।

विभाजन को स्वीकार करना ही मुस्लिम लीग की वर्षों से चली आ रही इस अड़ियलवादी मांग का समाधान था कि पृथक पाकिस्तान का निर्माण किया जाये। इसके लिये मुस्लिम लीग शुरू से ही प्रयासरत रही थी। लीग की मांग चरणबद्ध तरीके से आगे बढ़ती रही।

क्रिप्स मिशन (1942 ई.) के दौरान मुस्लिम बहुल प्रांतों को स्वायत्ता प्रदान कर दी गयी।

गांधी-जिन्ना वार्ता (1944 ई.) के दौरान गांधी जी ने मुस्लिम बहुत प्रांतों के आत्म-निर्धारण के अधिकार को स्वीकार कर लिया।

कैबिनेट मिशन योजना (1946 ई.) के पश्चात कांग्रेस ने मुस्लिम बहुल प्रांतों की पृथक संविधान सभा गठित किये जाने की संभावना को स्वीकार कर लिया। बाद में कांग्रेस ने बिना किसी आपति के अनिवार्य समूहीकरण के प्रावधान को स्वीकार कर लिया (दिसम्बर-1946)।

पाकिस्तान के संबंध में आधिकारिक तौर पर घोषणा मार्च 1947 में की गयी; कांग्रेस कार्यकारिणी के प्रस्ताव में यह जोर देकर कहा गया कि यदि देश का विभाजन किया गया तो पंजाब एवं बंगाल का भी विभाजन होना चाहिए।

3 जून योजनाः कांग्रेस ने विभाजन स्वीकार कर लिया।

संविधान सभा को स्वायत्तता दिए जाने की दृढ़तापूर्वक मांग करने के साथ ही कांग्रेस ने अनिवार्य समूहीकरण एवं विभाजन की मांग को शांतिपूर्वक स्वीकार कर लिया क्योंकि साम्प्रदायिक दंगों को तभी रोका जा सकता था।

विभाजन के संबंध में कांग्रेस की सोच संतुलित नहीं रही। उसके नेताओं द्वारा दिये जा रहे वक्तव्यों में भी यह बात परिलक्षित हो रही थी कि उनमें विभाजन के संबंध में उपयुक्त एवं दूरदर्शितापूर्ण समझ का अभाव है। कांग्रेस विभाजन का बिल्कुल सटीक आकलन करने में भी असफल रही। यह बात समय-समय पर कांग्रेसी नेताओं द्वारा दिये गये वक्तव्यों से प्रकट होती है।

जैसे- नेहरू ने कहा- “एक बार अंग्रेजों के भारत से चले जाने पर हिन्दू-मुस्लिम एकता पुनः स्थापित हो जायेगी तथा संयुक्त भारत का निर्माण हो जायेगा।”

-“विभाजन अस्थायी है।”

-“विभाजन शांतिपूर्ण होगा- एक बार जब पाकिस्तान का निर्माण हो जायेगा तो लीग के पास लड़ने के लिये क्या बचेगा।”

1920 से 1930 के मध्य साम्प्रदायिकता का जो स्वरूप था वह 1940 के दशक से भिन्न था। इस दशक में यह पूर्णरूप से एक पृथक मुस्लिम राष्ट्र की स्थापना के लिये सिमटकर रह गया था। लेकिन कांग्रेस नेतृत्व, साम्प्रदायिकता के इस रूप एवं उसकी शक्ति का आंकलन करने में विफल रहा।

गांधीजी की असमर्थता

इस समय गांधीजी स्वयं को असमर्थ महसूस कर रहे थे क्योंकि पूरे देश के लोग सांप्रदायिकता के रंग में रंग चुके थे। उन्होंने अत्यंत दुखीः मन से विभाजन स्वीकार किया क्योंकि लोग यही चाहते थे। अतः उनके सम्मुख कोई दूसरा विकल्प नहीं था। भला साम्प्रदायिक मानसिकता पर आधारित एक आंदोलन सांप्रदायिकता के विरुद्ध कैसे लड़ सकता था? उन्होंने कांग्रेस के लोगों से आग्रह किया कि वे दिल से विभाजन को स्वीकार न करें।

क्या भारत का विभाजन अनिवार्य था?

इस मुद्दे पर इतिहासकारों में एकमत का अभाव है तथा इसके संबंध में भिन्न-भिन्न इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न धारणायें प्रस्तुत की हैं।

इस मुद्दे की व्याख्या करते समय विशेषकर भारतीय, पाकिस्तानी एवं अंग्रेज इतिहासकारों ने विभाजन को अपने-अपने नजरिये से देखा है तथा अपनी-अपनी विचारधारायें प्रस्तुत की हैं। भारतीय इतिहासकार विभाजन अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति तथा मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिकता तथा पृथकता की नीति का चरमोत्कर्ष था। इन दोनों कारकों ने एक-दूसरे के समानांतर रहते हुए कार्य किया तथा भारतीय उपमहाद्वीप को विभाजन की त्रासदी झेलने हेतु विवश, कर दिया। ये दोनों ही कारक अपने उदय के उपरांत उत्तरोत्तर प्रभावी होते गये तथा इनका अंतिम चरण विभाजन के रूप में सामने आया। इन कारकों की प्रभावोत्पादकता इस बात से भी परिलक्षित होती है कि कांग्रेस जो विभाजन के बिल्कुल विरुद्ध थी, वह भी इन कारकों को निष्प्रभावी न बना सकी तथा उसे भी विभाजन स्वीकार करना पड़ा। कुछ भारतीय इतिहासकार विभाजन के लिये कांग्रेस की नीतियों तथा उसके नेताओं को जिम्मेदार ठहराते हैं। उनका तर्क है कि यदि कांग्रेस द्वारा स्पष्ट एवं दूरदर्शितापूर्ण नीति अपनाई गयी होती तथा मुस्लिम जनसमुदाय को राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा में समाहित कर लिया गया होता तो न ही इससे सांप्रदायिकता का उद्भव एवं विकास होता और न ही देश को विभाजन की त्रासदी झेलनी पड़ती।

पाकिस्तानी इतिहासकार विभाजन को न्यायोचित एवं अनिवार्य मानते हैं। उनके मत से विभाजन ही मुसलमानों के हितों के संरक्षण एवं पोषण का एकमात्र उपाय था। यदि विभाजन नहीं होता तो मुसलमानों की अस्मिता तथा उनकी महत्वाकांक्षायें बहुसंख्यक हिन्दू राष्ट्र में घुटकर रह जाती।

अंग्रेज इतिहासकार एवं पदाधिकारी भी विभाजन के प्रश्न पर भिन्न-भिन्न राय प्रस्तुत करते हैं। कुछ इसे उचित तथा कुछ इसे अनुचित मानते हैं। परंतु भले ही इस प्रश्न पर इतिहासकारों की धारणा कुछ भी हो इतना तय है विभाजन का सबसे प्रमुख उत्तरदायित्व मुहम्मद अली जिन्ना पर था। उन्होंने इस प्रश्न को सुलझाने के बजाय दिनों-दिन जटिल बनाया। वे मुसलमानों को इस बात का अहसास कराने में सफल रहे कि वे एक पृथक समुदाय हैं तथा हिन्दू बहुसंख्यक भारत में उनके हित कभी सुरक्षित नहीं हो सकते। फलतः मुस्लिम समाज की उन्नति एवं सुदृढ़ता के लिये उनका अलग राष्ट्र में रहना जरूरी है। उन्होंने विभाजन की डोर को इस प्रकार थामा कि वह डोर से रस्सी बन गयी तथा अंततः उसने मुस्लिम भावनाओं को इसी रस्सी के अंदर जकड़कर रख दिया। वे दिनोदिन शक्तिशाली होते रहे तथा धीरे-धीरे सफलतापूर्वक अपने मूल उद्देश्य की ओर बढ़ते रहे। उन्होंने अंततः एक ऐसा वतरण निर्मित कर दिया की समाधान की सभी संभावनाएं ख़त्म हो गयीं तथा देश का विभाजन अपरिहार्य हो गया।

यद्यपि विभाजन के लिये जिन्ना एवं उनके कार्यक्रम सर्वाधिक उत्तरदायी थे किंतु यदि घटनाओं का संतुलित विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि भूल दोनों पक्षों से हुयी। इस कार्य में हिन्दू महासभा जैसे हिन्दूवादी संगठनों ने भी कुछ कम गलत कदम नहीं उठायें तथा उन्होंने भी माहौल को बिगाड़ने में भरपूर योगदान दिया। समय-समय पर उन्होंने भेदभावपूर्ण बयान दिये तथा स्थिति को बद से बदतर बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यदि वे ही कुछ संतुलित रूख अपना लेते तो शायद बात बन जाती। परंतु सभी कारकों एवं परिस्थितियों ने मिलकर ऐसा वातावरण निर्मित कर दिया कि देश को अंततः दो भागों में विभाजित होना पड़ा तथा उसे इस प्रक्रिया की अपूरणीय क्षति झेलनी पड़ी।

संदर्भ - http://www.vivacepanorama.com/indian-independence-act-1947/